धर्मवीर भारती की कनुप्रिया : राधा–कृष्ण प्रेम की तन्मयता

डॉ. उर्मिला खरपूसे
प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
रानी दुर्गावती शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय मंडला, (म.प्र.)

Corresponding E-mail: uk16.1963@gmail.com

प्रेम विभिन्न अनुभूतियों, स्थितियों और दृष्टिकोणों का वैविध्य है, जिसका विस्तार अन्तरवैयक्तिक स्नेह से लेकर अनन्त आनन्द तक होता है। यह सषक्त आकर्षण की भावना और व्यक्तिगत जुड़ाव में देखा जा सकता है। यह मानवीय दयालुता, करुणा और स्नेह का पुण्य प्रतिनिधित्व भी कर सकता है– ''अन्य के लिए निःस्वार्थ वफा और उदार चिंता''। यह किसी व्यक्ति या प्राणि के प्रति दयापूर्ण एवं स्नेहिल व्यवहार द्वारा प्रदर्षित होता है।[1]

पाष्चात्य परम्परा के अनुसार प्रेम विभिन्न संस्करणों या भिन्न तरह के लोगों के परस्परावलंबी सहजीवन और मिलन की स्थिति है। प्रेम में प्रयोग और अर्थों की विविधता के साथ अनुभूतियों की जटिलता के शामिल हो जाने के कारण, प्रेम को परिभाषित करना और अन्य भावनात्मक स्थिति से तुलना करना लगभग कठिन है। प्रेम अपने विविध रूपों में अन्तरवैयक्तिक सम्बन्धों के लिए एक बड़ी सुविधा के रूप में और केन्द्रीय मनोवैज्ञानिक महत्व के कारण के रूप में कार्य करता है इसलिए यह सृजनात्मक कलाओं में एक बहुत ही आम विषय है। प्रेम मानवमात्र को मानवता के खतरों के खिलाफ एकजुट करने तथा प्रजाति की निरन्तरता को बनाये रखने की सुविधा के एक समारोह के रूप में समझा जा सकता है। प्रेम शब्द के अलग अलग सन्दर्भों में अलग अलग अर्थ हैं। अलग अलग भाषा एवं संस्कृतियों में प्रेम के अलग मायने हैं। एक उदाहरण देखिये– अँग्रजी में 'लव' ग्रीक में 'अगापे' या 'इरोज़' है। सांस्कृतिक विभिन्नताओं के कारण प्रेम की कई परिभाषायें स्थापित हो गयी हैं। प्रेम शब्द बहु विवादित एवं बहुआयामी है इसलिए 'क्या ये प्यार नहीं है' जैसे नकारात्मक वाक्यों से प्रदर्षित किया जाता है। सामान्यतः प्रेम घृणा के विपरीत एक सकारात्मक भाव है जो चाहत से ज्यादा गहरा होता है और मांसलता में कम और रूमानी आकर्षण की भावनात्मक अंतरंगता के रूप में ज्यादा होता है। प्रेम सामान्यतः कामुकता का विरुद्धार्थी है एवं एक ऐसा अन्तरवैयक्तिक संबन्ध है जो रोमानियत से लबरेज होता है। प्रेम अधिकतर दोस्ती से भी भिन्न होता है यद्यपि प्रेम शब्द गहरी दोस्ती के लिए भी प्रयोग किया जाता है। सामान्यतः प्रेम अक्सर एक ऐसे अनुभव को कहा जाता है

जो एक व्यक्ति दूसरे के लिए महसूस करता है। प्रेम में प्रायः व्यक्ति दूसरे व्यक्ति या वस्तु की फिक्र में स्वयं अपने आपको संलग्न करता है। प्रेम की समझ सांस्कृतिक भेदों को लांघ जाती है। समय के साथ प्रेम का विचार बहुत तेजी से बदल रहा है। कुछ सामान्य कथन प्रेम के लिए इस तरह हैं– वर्जिल– 'प्यार सबकुछ जीत सकता है', बीटल के अनुसार– 'हम सब प्यार चाहते हैं', सेंट थॉमस एक्वीनास– 'अनुकरणीय', अरस्तु– 'दूसरों के लिए अच्छा करने की चाह', बरट्रेण्ड रसेल प्यार की व्याख्या करते हुए कहते हैं– 'संबन्धित मूल्यों के विपरीत पूर्ण मूल्य की दशा', दार्शनिक गोट्टफ्रायड लिबनिज़ ने कहा है– 'प्रेम दूसरों की खुशी में झलकता है', मेहर बाबा– 'प्रेम में एकात्म की अनुभूति होती है', और 'प्रेम विषयी की आन्तरिक योग्यता के लिए सक्रिय प्रेरणा', बायोलॉजिस्ट जेरमी ग्रिफ्थि प्रेम की परिभाषा इस प्रकार करते हैं– 'बिना शर्त का स्वार्थ'। प्रेम जैविक, मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक और भौतिक आधार पर प्रेम के अनेक भेद हैं जैसे– अवैयक्तिक, अन्तरवैयक्तिक, आधिभौतिक, भौतिक, उदात्त आदि।[2]

अवैयक्तिक प्रेम– एक व्यक्ति कह सकता है कि प्यार एक वस्तु, सिद्धान्त, या लक्ष्य है जिसके प्रति वे गहराई से संकल्पित होते हैं और महानतम मूल्य है। लोग भौतिक वस्तुओं, जानवरों या गतिविधियों से भी प्रेम कर सकते हैं यदि वे उन चीजों में अपने आप को समर्पित कर देते हैं या उन चीजों के माध्यम से अपनी पहिचान बनाते हैं। यदि वासनात्मक आवेग सम्मिलित हो तो उस अनुभूति को पैराफिलिया कहते हैं।[3]

अन्तरवैयक्तिक प्रेम– अन्तरवैयक्तिक प्रेम मानवमात्र के बीच के प्रेम को प्रदर्शित करता है। यह भावनात्मक रूप से कोरी चाहत से बहुत गहरा होता है। अन्तरवैयक्तिक प्रेम अन्तरवैयक्तिक सम्बन्धों से सम्बद्ध होता है। ऐसा प्रेम पारिवारिक सदस्यों, मित्रों और पति पत्नी के बीच रह सकता है। प्रेम से जुड़ी हुई बहुत सी मनोवैज्ञानिक बीमारियाँ होती हैं जैसे कि इरोटोमेनिया।[4]

जैविक आधार – जैविक आधार पर प्रेम को भूख या प्यास की तरह का मानवीय इच्छा कहा जा सकता है। हेलेन फिषर जो कि एक प्रेम विषेषज्ञ हैं लिखते हैं, प्रेम के अनुभव को तीन आंशिक चरणों में विभाजित किया जा सकता है – वासना, आकर्षण और लगाव। वासना शारीरिक हवस, रोमान्टिक आकर्षण में अपने साथी के प्रति लगाव, उसका अनुकरण, उसके साथ समय बिताना और लगाव में घर साझा करना, अभिभावक की तरह जिम्मेदारी वहन करना, परस्पर रक्षा, मानवीय सुरक्षा की भावना होती है।[5]

भारतीय साहित्य में प्रेम की अनुभूतियों को साहित्यकारों ने अपने अपने अन्दाज में प्रस्तुत किया है। 'ये इश्क नहीं आसां, इतना ही समझ लीजे, इक आग का दरिया है, और डूब के जाना है'–ग़ालिब, 'अति सूधो सनेक को मारग है जहां नेकु सयानप बांक नहीं'–घनानन्द, प्रेम गली अति साकड़ी जामे दो न समाय', कबीर यह घर प्रेम का खाला का घर नाहीं', हमन है इश्क मस्ताना हमन को होशियारी क्या। जो बिछुड़े है

प्यारे से, भटकते दर बदर फिरते, हमारा या है हम में, हमन को इंतजारी क्या, न पल बिछुड़े पिया से, उन्हीं से नेह लागा है, हमन को बेकरारी क्या!

भारतीय दर्षन और साहित्य में 'प्रेम' को 'काम' से विपरीत एक उदात्त भाव भाव माना गया है। प्रेम का उदात्त रूप भक्ति है और भक्ति सर्वषक्तिमान ईष्वर के प्रति पूर्ण समर्पण। अपने आराध्य के प्रति विषुद्ध, निस्वार्थ और असीम प्रेम भक्त के जीवन का लक्ष्य होता है। कृष्ण के प्रति ऐसी ही भक्ति से भारतीय साहित्य भरा पड़ा है। जहाँ कृष्ण की भक्ति की बात होती है राधाजी का नाम आ ही जाता है। भारत में अनेक भक्ति सम्प्रदाय स्थापित हैं जो राधा कृष्ण की संयुक्त भक्ति करते हैं। राधा और कृष्ण का प्रेम प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक लगातार रचनाकारों के लिए आकर्षण का विषय रहा है और यही कारण है कि भारतीय साहित्य में सबसे अधिक रचनायें राधा कृष्ण को लेकर हुई हैं। भारतीय दर्षन में गोपिका राधा के प्रेम को सर्वषक्तिमान ब्रह्म के प्रति प्रेम का सबसे उदात्त उदाहरण माना जाता है। राधा को कृष्ण की आन्तरिक शक्ति और सर्वोच्च प्रेमिका माना जाता है। राधा का प्रेम काम वासना से परे भौतिक संसार पर होने वाला स्वार्थ से भरा प्यार नहीं माना जाता है।

गीतगोविन्द में कवि जयदेव ने राधा कृष्ण के प्रेम को भौतिक धरातल दिया। प्रेम की अन्यन्यता को बड़ी ही तल्लीनता के साथ कवि ने प्रस्तुत किया है। इसी तरह डॉ. धर्मवीर भारती ने अपने गीतिकाव्य 'कनुप्रिया' में राधा और कृष्ण के प्रेम को बड़ी ही भावप्रवणता के साथ प्रस्तुत किया है। यहाँ प्रेम की अनेक भंगिमायें लहरों की तरह तरंगायित होती हैं और सहृदयी पाठक को अपने साथ बहाकर रस की गंगा में डुबो देती हैं। डॉ. धर्मवीर भारती ने जीवन के बाह्य उद्वेग की अपेक्षा अपने अन्दर के साक्षात्कार के क्षणों को ज्यादा महत्वपूर्ण तथा सार्थक माना है। प्रेम की पराकाष्ठा ही अपने अन्दर का साक्षात्कार करवाने में समर्थ होती है। प्रेम की पराकाष्ठा अर्थात् चरम तन्मयता का क्षण। ''चरम तन्मयता का क्षण जो एक स्तर पर सारे बाह्य इतिहास की प्रक्रिया से ज्यादा मूल्यवान सिद्ध हुआ है, जो क्षण हमें सीपी की तरह खोल गया है– इस तरह कि समस्त बाह्य– अतीत, वर्तमान और भविष्य– सिमटकर उस क्षण में पूंजीभूत हो गया है, और हम हम नहीं रहे।''[6] भारती जी आगे कहते हैं कि ''जिसने अपने सहज मन से जीवन जिया है, तन्मयता के क्षणों में डूबकर सार्थकता पायी है, और जो अब उद्घोषित महानताओं से अभिभूत और आतंकित नहीं होता बल्कि आग्रह करता है कि वह उसी सहज की कसौटी पर समस्त को कसेगा। ऐसा ही आग्रह है कनुप्रिया''[7] अर्थात् राधा का। प्रेम में भावानुकूल तन्मयता की स्थिति प्रेम की पराकाष्ठा की स्थिति होती है। कनुप्रिया की मूलवृत्ति संषय या जिज्ञासा नहीं भावानुकूल तन्मयता है। कनुप्रिया अर्थात् कृष्ण की प्रिया राधा की सारी प्रतिक्रियायें उसी तन्मयता की विभिन्न स्थितियाँ हैं।

कनुप्रिया में प्रेम के प्रगाढ़ मिलन के क्षण हैं तो विरह की सघन अनुभूतियाँ भी अपनी सभी दषाओं के साथ उपस्थित हैं। स्मृति में प्रेम कितना मुखर हो आता है यह कनुप्रिया में आद्योपांत देखा जा सकता है। कनुप्रिया जब अपने प्रिय से तम के प्रगाढ़ पर्दे में भी मिलती थीं तो भी लज्जा से आरक्त हो जाती थीं लेकिन आज एकान्तिक क्षण में एकात्मकता का साक्षात्कार देखिये– ''पर हाय मुझे क्या मालूम था/कि इस बेला जब अपने को/अपने से छिपाने के लिए मेरे पास/कोई आवरण नहीं रहा/तुम मेरे जिस्म के एक एक तार से/झंकार उठोगे/सुनो! सच बतालाना मेरे स्वर्णिम संगीत/इस क्षण की प्रतिक्षा में तुम/कब से मुझमें छिपे सो रहे थे!''[8]

प्रेम में अनन्यता को जीना प्रेम की उदात्तता भी है और प्रेम की पूर्णता भी। तन्मयता के क्षणों में डूबी कनुप्रिया को कनु के द्वारका चले जाने के बाद भी अपनी एकान्तिकता एकाकीपन नहीं लगती। यमुना का साँवला जल भी उन्हें अपने प्रिय के आलिंगन का आनन्द देता है– ''मेरा यह वेतसलता सा कांपता तन बिम्ब/और उसके चारों ओर साँवली गहराई का अथाह प्रसार/जानते हो कैसा लगता है–/मानो यह यमुना की साँवली गहराई नहीं है/यह तुम हो जो सारे आवरण दूर कर/मुझे चारों ओर से कण कण रोम रोम/अपने श्यामल प्रगाढ़ अथाह आलिंगन में पोर पोर/ कसे हुए हो!''[9]

राधा ही नहीं कृष्ण का राधा के प्रति अनुराग कनुप्रिया में राधा के एकालाप के माध्यम से भारती जी ने बड़े कौषल से प्रदर्षित किया है। ''तुम्हें वह प्रणाम की मुद्रा और हाथों की गति/इस तरह भा गयी कि/तुम मेरे एक एक अंग की एक एक गति को/पूरी तरह बाँध लोगे/....और मुझ पगली को देखो कि मैं/तुम्हें समझती थी कि तुम कितने वीतराग हो/कितने निर्लिप्त।'[10] प्रेम की चरम परिणति शरीर के तिरोहित हो जाने में है। कृष्ण अपनी प्रिया से यही तो कितनी कितनी बार कहते हैं– ''सुनो तुम्हारे अधर, तुम्हारी पलकें, तुम्हारी बाँहें, तुम्हारे/चरण, तुम्हारे अंग प्रत्यंग, तुम्हारी चम्पकवर्णी देह,/मात्र पगडण्डियाँ हैं जो चरम साक्षात्कार के क्षणों में रहती नहीं–/रीत रीत जाती हैं!''[11] यही स्वीकृति कनुप्रिया इन पँक्तियों में देती हैं– ''हाँ चन्दन/तुम्हारे षिथिल आलिंगन में/मैंने कितनी बार इन सबको रीतता हुआ पाया है/मुझे ऐसा लगा है/जैसे किसी ने सहसा इस जिस्म के बोझ से/मुझे मुक्त कर दिया है/और इस समय मैं शरीर नहीं हूँ.../मैं मात्र एक सुगंध हूँ/आधी रात महकने वाले इन रजनीगंधा के फूलों/की प्रगाढ़, मधुर गंध–/ आकारहीन, वर्णहीन, रूपहीन।''[12]

प्रेम व्यक्ति को अपने निजत्व से मिलवाता भी है परिचित भी करवाता है, लेकिन प्रत्येक व्यक्ति के पास न तो इतना धैर्य होता है न सामर्थ्य। राधा और कृष्ण के प्रेम में यही निजत्व निहित है जो उनके प्रेम को विष्व स्तरीय महत्व प्रदान करता है पूजनीय बनाता है। कनु और कनुप्रिया के प्रेम में निहित निजत्व से साक्षात्कार की चरम स्थिति को भारती जी ने बड़े ही धैर्य और सामर्थ्य के साथ उकेरा है। देखिये ये

पँक्तियाँ– ''और क्या तुम इसी का प्रमाण दे रहे थे/जब तुम मेरे ही निजत्व को, मेरे आन्तरिक अर्थ को/मेरी माँग में भर रहे थे!''[13] प्रेम इस संसार के लिए आज भी एक पहेली है, इसको ठीक ठीक समझना तो कठिन है ही इसका ठीक ठीक नाम देना तक आसान नहीं है यदि बात राधा कृष्ण के प्रेम की हो तो कठिनाई और बढ़ जाती है। कनुप्रिया भी कनु के प्रेम को कहाँ समझ पाती है तभी तो वह कहती है– ''हाय मैं सच कहती हूँ/मैं इसे समझी नहीं; नहीं समझी, बिल्कुल नहीं समझी/यह सारे संसार से पृथक पद्धति का/जो तुम्हारा प्यार है न/इसकी भाषा समझ पाना क्या इतना सरल है!....फिर मैं/अगर अपनी मांग पर/आम के बौर की लिपि में लिखी भाषा नहीं समझ पायी तो इसमें मेरा क्या दोष मेरे लीला बन्धु।''[14] कनु के प्रेम को, विरह के दर्द को, दर्द के अर्थ को नई अर्थवत्ता देती भारती की 'कनुप्रिया' कहती है– ''तुम्हारा अजीब सा प्यार है/जो सम्पूर्णतः बाँधकर भी/सम्पूर्णतः मुक्त छोड़ देता है! क्यों छोड़ देता है प्रिय? क्या हर बार इस दर्द के नये अर्थ/समझने के लिए!''[15]

प्रेम का वास्तव में कोई नाम नहीं हो सकता न किसी रिष्ते में प्रेम को बाँधा जा सकता है, न इसे मापा जा सकता है न इसको तौला जा सकता है। प्रेम जैसी विराट भावना की कोई सीमा नहीं हो सकती, इसे सिर्फ अनुभूत किया जा सकता है। तभी तो कनुप्रिया अपनी विवषता को इन शब्दों में व्यक्त कर रही हैं– ''और इस निराधार भूमि पर/चारों ओर से पूछे जाते हुए प्रष्नों की बौछार से/घबराकर मैंने बार बार/तुम्हें शब्दों के फूलपाष में जकड़ना चाहा है/ सखा– बन्धु– आराध्य/षिषु–दिव्य/सहचर/और अपने को नयी व्याख्याएँ देनी चाही हैं:/ सखी– साधिका– बान्धवी/ माँ–वधु–सहचरी–/और मैं बार बार नये नये रूपों में/उमड़ उमड़कर/तुम्हारे तट तक आयी/और तुमने हर बार अथाह समुद्र की भाँति/मुझे धारण कर लिया–/विलीन कर लिया–/ फिर भी अकूल बने रहे/मेरे साँवले समुद्र तुम आखिर हो मेरे कौन/मैं इसे कभी माप क्यों नहीं पाती?''[16]

प्रेम की विराटता को संसार की विराट वस्तुओं के माध्यम से समझा जा सकता है शायद इसलिए भारतीय दर्षन इस सृष्टि को ईष्वर की इच्छा या संकल्प माना है। भारती जी की कनुप्रिया कृष्ण के संकल्प का अर्थ स्पष्ट करते हुए अपने प्रति कृष्ण के प्रेम को सृष्टि का कारण निरूपित करते हुए कहती हैं– ''इस संकल्प का–/अर्थ कौन है? कौन है वह/जिसकी खोज में तुमने/ काल की अनन्त पगडण्डी पर सूरज चांद को भेज रक्खा है/कौन है जिसे तुमने/झंझा के उद्दाम स्वरों में पुकारा है/..कौन है जिसके लिए तुमने/महासागर की उत्ताल भुजायें फेला दी हैं/... और कौन है जिसे/नदियों जैसे तरल घुमाव दे देकर/तुमने तरंग मालाओं की तरह/अपने कण्ठ में, वक्ष पर, कलाइयों में/लपेट लिया है–/वह मैं हूँ मेरे प्रियतम! वह मैं हूँ वह मैं हूँ/....और यह प्रवाह में बहती हुई/तुम्हारी असंख्य सृष्टियों का क्रम/महज हमारे गहरे प्यार/प्रगाढ़ विलास/ और अतृप्त क्रीड़ा की अनन्त पुनरावृत्तियाँ हैं/ ओ मेरे स्रष्टा/तुम्हारे सम्पूर्ण

अस्तित्व का अर्थ है/ मात्र तुम्हारी सृष्टि/तुम्हारी सम्पूर्ण सृष्टि का अर्थ है/मात्र तुम्हारी इच्छा/और तुम्हारी सम्पूर्ण इच्छा का अर्थ हूँ/केवल मैं! केवल मैं!! केवल मैं!!!''[17]

निष्कर्षतः, डॉ. धर्मवीर भारती जी के गीतिकाव्य 'कनुप्रिया' में प्रेम के विविध रूपों की रूपहली छटा देखते ही बनती है। अवैयक्तिक, अन्तरवैयक्ति जैसे सांसारिक प्रेम की भावभूमि से ऊपर उठकर कनुप्रिया में राधा और कृष्ण का प्रेम विराट भावभूमि पर स्थापित हो जाता है। यही कनुप्रिया की सफलता है और सार्थकता भी।

संदर्भ सूचीः–

1. वीकिपीडिया, अन्तरजाल
2. वही
3. वही
4. वही
5. वही
6. डॉ. धर्मवीर भारती : कनुप्रिया, प्राक्कथन
7. वही
8. वही, पृष्ठ–13
9. वही, पृष्ठ–16
10. वही, पृष्ठ–14
11. वही, पृष्ठ–27
12. वही, पृष्ठ–27–28
13. वही, पृष्ठ–31
14. वही
15. वही, पृष्ठ–32
16. वही, पृष्ठ–37–38
17. वही, पृष्ठ–42